श्री गुरुग्रन्थ साहिब में भगत कबीर की गुरुबानी

डॉ0 बृजबाला सिंह*

'**गुरुग्रन्थ** साहिब' पहली जानी–मानी पुस्तक है, जो **गुरु** परम्परा को स्थापित भी करती है और समाप्त भी करती है। ग्रन्थ के दस **गुरुओं** में प्रायः सभी बिना नाम दिये नानक के नाम पर अपनी रचनाएँ लिखते हैं। **गुरुग्रन्थ** साहिब के रूप में स्थापित होते है। दसवें **गुरु** गोविन्द सिंह दशम् ग्रन्थ के बराबर है। **गुरुपद** को महिला मंडित करने, **गुरु** द्वारा संस्कृति का विकास करने, शिष्य नहीं सिख पन्थ खड़ा करने, कविता के लिए ही मंदिर साहब, सर, अमृतसर और विशेष वेश में वस्त्रधारी **गुरुवाणी** के पाठक, संरक्षक, ग्रन्थी और पंथी तैयार करने का उन्होंने यत्न किया। यह उनका मत था कि **गुरुओं** के शब्द की पूजा हो। उसी के लिए आरती, कड़ा प्रसाद और अमृत छकने की संघर्षशील प्रतिज्ञाएँ है, जो जाति, वर्ण, छुआछूत जैसी परम्परा विरोधी चिंतक एक संगठित जाति को सैनिक–धर्म से जोड़ती हैं। इसके साथ यह भी हुआ कि उनके पुत्र श्री चन्द्र ने अपना 'उदासी पंथ' अलग से खड़ा कर लिया। इस पूरी प्रक्रिया को ग्रन्थ के चार सौ से अधिक साल पूरे होने पर आज के संदर्भ में समझने की आवश्यकता है। सिख परिकल्पना धर्म नहीं है, पंथ है। **गुरुनानक** ने जो पंथ चलाया था, वही सिक्ख पंथ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। तत्कालीन संत विचारधारा के अनुसार नानक भी निराकारवादी थे। वे अवतारवाद, जात–पांत और मूर्तिपूजा को नहीं मानते थे। उनका मत एक ओर वेदान्त पर आधारित है, वहीं दूसरी ओर तसव्वुफ के भी अनेक लक्षण उसमें है। विशेषतः **गुरुनानक** की उपासना के चारों अंगों (सरन–खंड, ज्ञान–खंड, करम–खंड, तथा सच–खंड) सूफियों के चार मुकामात (शरीअत, मारफत, उकबा और लाहूत) से निकले हैं, ऐसा विद्वानों का विचार है। **गुरुनानक** और शेख फरीद के बीच गाढ़ी मैत्री थी, इसके भी प्रमाण उपलब्ध हैं। **गुरुग्रन्थ** साहब में शेख फरीद के भी चार पद और एक सौ तीस श्लोक मिलते हैं।

पंथ की परिकल्पना बहुत आकस्मिक नहीं है। महाभारत काल में कह दिया गया था कि–

***एसोसिएट प्रोफेसर हिन्दी विभाग आर्य महिला पी0जी0 कॉलेज, वाराणसी।**

'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्। म्हाजनो येन गतः स पन्थाः।'

इसलिए सिखपंथ के निर्माण में व्यक्तियों को मुख्य माना गया, जो धर्म के नायक नहीं हैं पंथ के नायक हैं। अगर धर्म के नायक होते तो हिन्दू होते, मुसलमान होते। नानक के सबसे आत्मीय सहकर्मी मरदाना में यदि कट्टरता होती तो नानक के साथ होती। शेख फरीद मुसलमान सूफी थे, यदि उनमें कट्टरता होती तो वे ग्रन्थ में नहीं होते। इसी तरह हिन्दू या मुसलमान, मुसलमान या हिन्दू । कबीर तो साफ कहते है कि ना हिन्दू न मुसलमान। सेन या हुसैन के बारे में पता नहीं था कि वे हिन्दू थे या मुसलमान। वे नाई थे। इसी तरह **गुरुग्रन्थ** में शामिल होने वाले **गुरु** या **सद्गुरु** की महिमा से मंडित कबीर, रैदास, सेन, **धन्ना**, पीपा, सधना और त्रिलोचन यहां तक कि इनसे अलग बेनी जैसे कवि पंथी सुर के कवि हैं, किसी धर्म के नहीं। जहाँ हैं वहीं से पंथ शुरू होता है। उनकी पहचान जुलाहा, दर्जी, मोची, नाई, किसान, बनिया और कसाई के रूप में हैं। भारतवर्षी होने के कारण उनके यहाँ राम हैं, लेकिन दशरथसुत राम से जुड़ी तमाम धार्मिकताएँ उनके राम में नहीं थी। उनके यहाँ उनके यहाँ घट–घट व्यापी राम है अर्थात् सभी मनुष्य राम है, सभी जीव राम है। उन्हें बहुत निश्चय के साथ न धर्मी माना गया है, न **गुरु** माना गया है। ऐसे लोगों को भगत कहा गया है। **सद्गुरु** और साहिब की प्रतिज्ञा तक पहुँचे हुए कबीर भगत, रैदास भगत हैं। चाहे एक कविता हो या पांच या दस, भगत कवियों की **गुरुपोथियों** में बड़ी व्यापक भूमिका है। यही कारण है कि ये **गुरुग्रन्थ** को सिख की मर्यादाओं के आर–पार पूरे भारतीय सन्दर्भ में सम्बद्ध करते हैं। **गुरुग्रन्थ** की आधार प्रतिज्ञा कविता है, सबद है, सलोक है, पहरा है, हरिजस है, जपुजी है। इसलिए **गुरुग्रन्थ** साहिब के व्यापक संदर्भ को ध्यान में रखते हुए ग्रन्थ में भगत कवियों पर विचार, संवाद अवश्य होना चाहिए। निश्चित रूप से इन भगत कवियों में कबीर की रचनायें अधिक हैं और वे उत्तम कवि हैं। इन भगत कवियों की रचनाएँ विविध रागों में पायी जाती हैं।

गुरुपोथी में आरंभ में पाँच **गुरुओं** की रचनाओं का जिक्र है, लेकिन भगत कहे जाने वाले कबीर से लेकर प्रायः सभी कवि **गुरु** अर्जुनदेव के निर्देश से 1604 में संलग्न कर लिये गये थे। **गुरुग्रन्थ** की मूल कल्पना गुरू अर्जुनदेव की ही मानी जानी चाहिए, जिनके निर्देश पर भाई रामदास ने **गुरु** अंगद, हर गोविंद, हरराय, हर कष्ण राय, तेग बहादुर सिंह और गोंविन्द सिंह **गुरु** हैं। प्रत्येक **गुरु** अन्त समय में अपने उत्तराधिकारी को अपना पद सौंपकर उसे पंथ का **गुरु** घोषित कर दिया करते थे। **गुरु** गोविन्द सिंह जब स्वर्गवासी होने लगे, तब उन्होंने ग्रन्थ को ही अपना पंथ **गुरु** घोषित किया और यह आज्ञा दे दी की अब से कोई व्यक्ति **गुरु** नही होगा। यह संग्रह ग्रन्थ था। जिसे पूज्य शब्दों की पोथी और कई तरह के

सांस्कृतिक अनुशासन से **गुरु** गोविन्द सिंह ने सम्बद्ध किया। एक दोहा **गुरु** गोविन्द सिंह जी का भी है। इस ग्रन्थ में अन्य हिन्दू संतों और सुधारकों के भी पद है। **गुरु** गोविन्द सिंह साहित्य के बहुत बड़े विद्वान, कवियों के प्रबल संरक्षक और स्वंय भी हिन्दी के अच्छे कवि थे। अनकी सभी रचनाओं को सिक्ख, 'दशम् ग्रन्थ' के नाम से अभिहीत करते हैं। उन्होंने विचित्र नाटक जफरनामा, सौ सारवी, जाप और चंडी चरित्र आदि अनेक ग्रंथों की रचना की थी। उन्होंने एक रामायण भी लिखी थी। जिसे पटियाला कॉलेज के प्राध्यापक सन्त इन्द्र सिंह चक्रवर्ती ने हाल में 'गोविन्द–रामायण' के नाम से प्रकाशित किया।[1] सिक्ख शब्द के गायक हैं, रक्षक है और उसे सदाचार के प्रतीक के रूप में श्रद्धा से सम्बद्ध करते हैं। यह सबद अर्थात् **गुरुवाणी**, भाट, सूफी **गुरुद्वारा**, **गुरुसर** अमृतसर कड़ा के साथ वेश और देश की रक्षा का शब्द–सैनिक के रूप में संकल्प संपूर्ण सिख पंथ में दशम् **गुरु** गोविन्द सिंह का है।

सामान्य जन समझते हैं कि श्री **गुरु** ग्रन्थ साहिब सिक्ख–पंथ का धर्म ग्रन्थ है उसमें सिक्ख अनुयायियों के लिए ही विविध निषेध वर्णित होंगे, जबकि यह तथ्य नही हैं। अलबत्ता यह सही है कि संकट और त्रास के युग में एक संत्रस्त मानव–समूह इन वाणियों के बल पर संगठित हुआ और उसके अपूर्व उत्सर्ग एवं बलिदान द्वारा संत्रस्त समाज और देश ने परित्राण प्राप्त किया। श्री **गुरु** ग्रन्थ साहिब की दिव्य **गुरु** वाणियों में किसी वर्ग विशेष, पक्ष–विपक्ष, मित्र–शत्रु की झलक मात्र नहीं मिलती। सामाजिक एवं धार्मिक आडम्बरों से बन्धनमुक्त करते हुए शाश्वत सदाचार और सद्विचार के द्वारा **गुरुचिंतन**, आत्म–परमात्मा–चिंतन और मिलन की ओर मानव–मात्र को उन्मुख किया गया। कहीं यह गंथ भी नहीं मिलती कि कौन उत्पीड़ित है, कौन उत्पीड़क। मानवीय दुर्बलताओं और दुर्वासनाओं को ही शत्रु मानकर साक्षात् ईश्वर स्वरूप **गुरुवाणी** कृपा से उनसे स्वतः त्राण और अन्ततः आवागमन से मुक्ति पाने का नाद सारे ग्रन्थ में ओत–प्रोत है। यह तो भान भी नहीं होता कि यह किसी विशिष्ट सम्प्रदाय का ग्रन्थ है। यह **श्रीगुरुग्रन्थ** साहब की अलौकिकता है।[2]

गुरूग्रंथ साहिब में संकलित संतों की रचनाओं के चयन एवं संकलन के आधार पर विचार करते हुए डा0 विजयेन्द्र नाथ मिश्र ने लिखा है कि 'श्री **गुरु** ग्रन्थ साहिब में संतों की वाणी के संकलन का आधार क्या रहा होगा, इसका अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं हैं। संकलित वाणियों के सामान्य अध्ययन से स्पष्ट है कि देश के विभिन्न भागों की विविध सन्त परम्पराओं से संबन्धित ये सभी सन्त भावनात्मक एकता के धरातल पर एक दूसरे से सम्बद्ध थे। इनका मार्ग भी एक था और लक्ष्य भी एक ही था। प्रथम **गुरु** श्री नानक स्वयं ही अपने समकालीन तथा पूववर्ती संतों की वाणी को उद्धृत संग्रहित एवं समाद्रत करते रहे होंगे। **गुरु**–परम्परा

से प्राप्त वाणियों को **गुरु** अर्जुनदेव ने सन् (1582–1607) में जब **गुरुग्रन्थ** साहिब के रूप में पहली बार सम्पादित किया गया होगा तो अवश्य ही उनका उद्देश्य मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए संतों की वाणी को समन्वित रूप में सुलभ बनाना रहा होगा। एक पंथ विशेष के धर्मग्रन्थ के रूप में यदि इस ग्रन्थ की कल्पना की गयी होती तो इसमें जयदेव, शेख फरीद, त्रिलोचन, नामदेव, रामानन्द, सधना, बेनी, रविदास, कबीर, भीखा, धन्ना, पीपा, सेन, परमानन्द दास, सूरदास (भले ही एक पंक्ति हो पर है) के पद नहीं होते। श्री **गुरुग्रन्थ** साहिब देश की विविध संत परम्पराओं के बीच भावनात्मक एकता का प्रामाणिक प्रतीक है। यह हिन्दी काव्य का आधार स्त्रोत है।[3]

गुरुवाणी या **गुरुग्रन्थ** साहिब में बारह संतों की रचनाएं विभिन्न रागों में संकलित की गयी हैं। राग गउड़ी और उसके विभिन्न रूपान्तर है जो गउड़ी गुआरेरी, गउड़ी सोरठी, गउड़ीचैती, गउड़ी वैरागणि, त्रिपदी गउड़ी, पूरबी बावन अक्खरी के नामों से है, जो भक्तों की कविता में मिलती हैं। गउड़ी पुराना राग है जिसे संकट, आस्था की प्रतीक्षा, अति तन्मयता की स्थिति अर्थात् प्रणाम की निष्ठा के साथ ही गाया जाता है। **गुरु** ग्रन्थ साहिब में यह राग कबीर, रैदास और नामदेव के पदों में गायन के लिए प्रयुक्त है। यह राग प्रातः काल गाया जाता है। संगीत ग्रन्थों एवं क्रियात्मक पक्ष के संगीत विद्वानों के मध्य इस राग के भिन्न–भिन्न स्वरूप प्रचलित हैं। कबीर के पदों में यह राग सबसे अधिक है। कबीर ने **गुरु** की महिमा सर्वोपरि बतायी है। **गुरु** उनके लिए ईश्वर से बड़ा है। यह बात उन्होंने न केवल अपने जीवन में उतारी, बल्कि अपनी रचनाओं के माध्यम से दूसरों को भी सिखाया। जिस कबीर ने इतना बड़ा ज्ञान जनता को दिया, उसे **गुरु** नही माना गया। क्या कारण है कि उन्हें भगत कहा गया। कबीर के पदों को केन्द्र में रखकर यह बात स्पष्ट की जा सकती हैं। उन्होंने विभिन्न रागों में पदों की रचना की है। पदों के राग भले ही बदल गये हों, किन्तु परमात्म तत्व, **गुरु**, ज्ञान, सदाचार, मिथ्या आडम्बरों का उपहास, धर्म के नाम पर पाखंड तथा समाज में व्याप्त तमाम रूढ़ियों एवं कुसंस्कारों को सही ढंग से सामने लाना ही उसका अन्तिम उद्देश्य रहा है। श्री **गुरुग्रन्थ** साहब में संग्रहित एक पद से यह बात स्पष्ट की जा सकती हैं। यह राग गउड़ी में गाया गया है–

।। गउड़ी कबीर जी।। जब हम एको एकु करि जानिआ। तब लोगह काहे, दुखु मानिआ।।1।। हम अपतह अपुनी पवितखोई। हमरै खोजि परहु मति कोई।।2।। रहाउ।। हम मंदे मंदे मन माही। साझ पाति काहू सिउनाहीं ।।3।। पति अपति ता की नहीं लाज। तब जानहुगे जब उधरैगो पाज।।4।। कहु कबीर पति हरि परवानु। सरब तिआगि भजु केवल रामु।।5।।3।।[4]

कबीर का कहना है कि जब हमने समझ लिया है कि सर्वत्र एक परमात्मा ही व्यापक है, तो पता नही लोगों ने इस बात को क्यों बुरा माना। मैं निस्संग हो गया हूँ और मुझे यह परवाह नहीं कि कोई मनुष्य मेरी प्रतिष्ठा करे अथवा न करे। इसलिए जिस मार्ग पर मैं चल रहा हूँ, भले ही कोई मेरे पीछे उस मार्ग पर न चले। यदि मैं बुरा हूँ तो अपने ही भीतर बुरा हूँ, किसी को इस बात से क्या प्रयोजन? मैंने किसी के साथ मेल–मुलाकात इसलिए भी नहीं रखी हैं। कोई मेरी प्रतिष्ठा करे अथवा निरादर करे, मैं इसमें हानि नहीं समझता, क्योंकि तुम्हें भी तब ही समझ आएगी कि असली प्रतिष्ठा अथवा निरादर क्या है– जब तुम्हारा यह जगत–दिखावा प्रकट हो जायेगा। हे कबीर! कह असली प्रतिष्ठा उसी की है, जिसे प्रभु स्वीकार कर लें। इसलिए हे कबीर! शेष सब कुछ छोड़कर परमात्मा का स्मरण कर। कबीरदास जी कहते हैं कि मेरे साथ साधना करने वाले व्यक्ति बहुत कम है मेरे दोस्त कम हैं। मैं जिस सत्य का अनुभव करता हूँ उसका वर्णन बार–बार किससे करूँ। वह प्रभु नाश, उत्पत्ति और रक्षा रूप में पूरी तरह समर्थ है। अतः वह जिस प्रकार रखे, हमें उसी प्रकार रहना चाहिए। मैंने सर्वत्र खोजकर देख लिया है, भगवान के बिना सर्वत्र शून्य है। षट्दर्शनों एवं विविध शास्त्रों जिन्हें कबीर मात्र पाखण्ड मानते हैं। में प्रभु की खोज में व्यग्रतापूर्वक बड़े प्रयत्न किये गये है। परन्तु कोई भी उन प्रभु को ठीक तरह से नहीं जान पाया। उसी के जानने के लिए संसार जप, नियम–संयम, पूजा–अर्चना, ज्योति प्रज्जवलन आदि कामों में पागल हो रहा है। उसके निरूपण में ग्रंथ के ग्रन्थ लिखकर लोग मन ही मन फूले नही समाते हैं, परन्तु वे सब इधर–उधर भटक रहे हैं। इनमें किसी को भी वास्तविक स्वरूप ज्ञात नहीं हैं। कबीर दास का यह भी मानना है कि जोगी, जंगम आदि विभिन्न सम्प्रदायों के साधक उसकी खोज में झूठी आशा लेकर लगे हुए हैं। इनके द्वारा गृहीत साधनों से वह प्राप्त होने वाला नहीं हैं। वह तो निश्चयपूर्वक उसी को प्राप्त होता है जो **गुरु** की कृपा पर विश्वास करके चातक की भांति अनन्य भाव से उसका स्मरण करता है।

गुरु ग्रन्थ साहिब में सिख **गुरुओं** के साथ–साथ संत एवं भगत कवियों की रचनाएं भी प्रचुर हैं। सर्वाधिक रचनाएं कबीरदास की हैं तत्पश्चात् नामदेव, रविदास, त्रिलोचन, बेनी, जयदेव, परमानन्द, धन्ना, रामानन्द, सधना, पीपा, सैन की।

गुरुग्रन्थ साहिब में रविदास के पदों की संख्या 41 बतायी गयी है किन्तु गणना करने पर 40 प्राप्त हुई।

गुरु ग्रन्थ साहिब में संतों को ये रचनाएं एक ही स्थल पर न दी जाकर रागों के अनुसार बँटी हुई हैं, जो **गुरुओं** की रचनाओं के बीच–बीच में सजी हुई लगती हैं।

यह ध्यान देने की बात है कि जिस कबीर को पंथ ने पंथवाणी, पोथियों और दादू पंथी पदों में प्रायः साहब माना गया है, उसी कबीर को **गुरु** ग्रन्थ साहिब में **गुरु** नहीं, **सदगुरुग्रन्थ** माना गया है। भगत माना गया है। उनका दर्जा **गुरुओं** से नीचे है। लेकिन कबीर के लिए यह महत्वपूर्ण नहीं है। वे कही राम का कूता हैं। प्रायः दास कबीर हैं। अनेक स्थानों पर कबिरा, कबीरै, जुलाहा, कोरी और पकरि जुलाहा कीन्हा की यातना के साथ अनहद की वर्षा में भीगने वाले अकेले परम **पुरुष** और तो और वे अपने को सुन–नर मुनि सबसे अलग मानते हैं। कोई देवता उके बराबर नहीं है। कोई मनुष्य उनके बराबर नहीं हैं मन का स्वामी मुनि उनके बराबर नहीं है–

'सर नर मुनि सब ओढ़े, ओढ़ के मैली कीन्हि चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़े जस की तस धरि दीन्हीं चदरिया।'

अर्थात् न उजला किया, न मैला किया। न नया किया, न पुराना किया। भगत कबीर की सबसे बड़ी खूबी इसी जस का तस में हैं वे निर्मल जल रहना चाहते है, गंगा नहीं। लोहा बने रहना चाहते हैं, राम नहीं। जस का तस वाली बात ही कबीर के काव्य का असली रूप है।

देखना यह है कि क्या कबीर की कविता सचमुच सूक्तियों का संग्रह है? तर्क का कोई निश्चित प्रकट है? क्या उसमें सचमुच अलंकार नहीं है? कंठ्य नहीं है? व्यंजना नहीं है? कोई वक्रोक्ति या विलक्षणता नहीं या केवल अभिधा का ही सौन्दर्य है। उनकी निचाट बयानी अर्थात् किसी विरल को चिन्हित करना, किसी रेयर को रिपीट करना, उनका कौशल है। कला है। सुखिया सब संसार है पावै और सोवै। दुखिया दास कबीर जागे और रोवै। इसे ही निचाट बयानी कहते हैं। इस तरह की तिर्यक् विलक्षणता, अतिप्रतीक अर्थवत्ता रचना को सपाट करती है। उलटबासी नाम से प्रचलित उनकी बहुत सी रचनाएं बहुत सीधी हैं। उनकी उलटबासियों का अध्ययन किया जाता है, तब यह समस्या होती है जब उक्तियों का अर्थ खोजा जाने लगता है। बरसै कंबल भीजै पानी' का सीधा अर्थ कंबल जैसे काले–काले, बादल बरस रहे हैं। पानी के कारण मौसम भींगा–भींगा है। कबीर तो बात को सीधे कहना चाहते हैं। उलटवासियाँ उस सामाजिक प्रभाव के भीतर से पैदा हुई हैं, जिसमें समाज के कारण सामाजिक मूल्यों का विनाश होता है। व्यक्तिगत मनोविकार अर्थात् काम, क्रोध, लोभ, मोह अपनी प्रकषति पर रहते हैं। बेटा बाप को पैदा करता है अर्थात् बाप पहले होता है या बेटा। इस सामाजिक संदर्भ की पहचान हो तो कबीर की उलटबासियों में कोई दर्शन नहीं है। कबीर के संबोधन बहुत रोचक हैं। उनके यहां बहुत सारे साधों हैं। साधों अर्थात् काम करने वाली एक जाति, जो गरीब और सीधी होती है। ये छोटे लोगों के समुदाय हैं

इसलिए उनके यहां सारे साधु का मतलब नहीं है, साधों का मानना है कि उनके मुल्ला, काजी, पांड़े कई तरह के मुखिया हैं, जिनसे कबीर गुस्से में बात करते हैं। उन्हें पता है कि इन लोगों ने ही सारा गड़बड़ कर रखा है। धर्म,जाति मन्दिर, देवताओं को बांट कर रखा है। धर्म, जाति, मंदिर, देवताओं का संगठन किया है। एक और जगह है जहाँ कबीर खुद से बात करते हैं। खुद से बात करते समय वे निर्वाणी हो जाते हैं। खुद अपनी सीढ़ियाँ बनाते हुए ऐसी जगह रहते हैं, जहाँ वे अकेले खड़े हैं। अकेले अर्थात् जहाँ कोई धन्धा नहीं है। द्वन्द्व नहीं है और यह वह, मैं तुम अपना–पराया जैसा दो नहीं है।

नानक के परवर्ती संतों ने **गुरुग्रन्थ** के लिए कबीर की जो रचनाएँ एकत्र की है, वे आदमी की अहंता का विस्तार करने वाली है। यह बात कबीर प्रायः अपनी कविता में कहते हैं कि वे अपने को बड़ा नहीं मानते। उनके यहाँ अद्वितीयता का मतलब है बियान्डविल। **गुरुग्रन्थ** साहब में उनकी रचनाओं की मूल संख्या 292 है। इसमें पौरी, बावन अक्खरी, थित्ती, बार,सत और 249 सलोक हैं। यह संख्या **गुरु** नानक से कम है लेकिन कम नहीं है। **गुरुनानक** के 974 पद है, जिनमें जपुजी, पद, पौदी के साथ–साथ तमाम तरह की रचनाएँ हैं तमाम तरह की इन रचनाओं की साथ साखियाँ भी हैं। नानक नाम से ही **गुरु** अंगद की रचनाएँ जिनकी संख्या 62 हैं **गुरु** अमरदास की 907 रचनाएँ है। **गुरु** रामदास की 679 तथा **गुरु** अर्जुनदेव की 2218 रचनाएँ है, **गुरु** तेग बहादुर सिंह के 49 पद और 56 सलोक है। **गुरु** गोविन्द सिह का एक पद है। तीन **गुरु** हरगोविन्द, हरराय और हरकृष्ण राय कवि नहीं है। **गुरुगोविंद** सिंह बड़े कवि है किन्तु उनकी रचनाएँ सांसारिक है। इसलिए अपनी वाणी को उन्होंने **गुरु** ग्रन्थ साहिब में स्थान नहीं दिया है जबकि शेष **गुरुओं** की वाणी दिव्य वाणी हैं ऐसा उनका मानना है।

गुरु ग्रन्थ साहिब में संपूर्ण रचनाओं को पहचानने में थोड़ी असुविधा अवश्य होती है किन्तु असंभव नहीं है। ये रचनाएँ क्रमशः भिन्न–भिन्न महलों में संग्रहीत है। जैसे प्रथम **गुरु** नानक की रचनाएँ महला एक में है। द्वितीय **गुरु** की रचनाएँ महला दो में, तृतीय **गुरु** अमर दास की रचनाएँ महला तीन में चतुर्थ **गुरु** रामदास की रचनाएँ महला चार में और पंचम **गुरु** अर्जुनदेव की रचनाएँ महला पाँच में संग्रहित है। कहीं–कहीं एक **गुरु** के महले में दूसरे **गुरु** की भी रचनाएँ मिलती है, उदाहरणार्थ तीसरे **गुरु** अमरदास चौथे **गुरु** रामदास, पांचवे **गुरु** अर्जुनदेव और नवें **गुरु** तेग बहादुर सिंह की रचनाएँ भी जो **गुरु** नानक के नाम से है, महला 1 में होनी चाहिए जो नहीं है। सलोक महला तीन में लिखा है–

नानक जह–जह में फिरयों, तह–तह साँचा सोइ।
*जह देखा तह एकु है, **गुरु** मुखि परगट होइ।।*

तथा महला चार में लिखा है–

*बड़ भागिया सोहागणी, जिना **गुरुमुखी** मिल्या हिरिराइ।*
अंतर जोति परकासिया, नानक नामि समाइ।।

'उत्तर भारत की संत परम्परा' के लेखक पं0 परशुराम चतुर्वेदी का मानना है कि, ''यह पुनः संपादन **गुरु** गोविन्द सिंह की आज्ञा से भाई मनी सिंह ने किया। इसके पूर्व भी भाई **गुरुदास** और भाई बन्नो द्वारा ग्रन्थ के दो संस्करण प्रस्तुत किये जा चुके है।''[5]

इस असंगति के लिए यह बात कही जाती है कि **गुरुनानक** के प्रति श्रद्धा दिखाने के लिए **गुरुओं** ने उनके नाम से रचनाएँ लिख दीं। **गुरुग्रन्थ** साहब के प्रबन्धन का जहाँ तक प्रश्न है,एक व्यस्थिति एवं निश्चित योजना से पदों का मंथन किया गया है।

गुरुग्रन्थ साहिब में गुरूओं, भगत, संत कवियों ने 31 राग–रागिनियों का प्रयोग किया है। श्री राग, माझ, गौड़ी, आसा, गुजरी, देवगान्धारी, विहाग, सोरठ, धनासरी जैतश्री, तोड़ी, बैरागी, तिलंग, सूही, विलावल, रामकली, नटनारायन, मालु गौण, मारू, तुखारी, केदारा, भैरव, बसंत, सारंग, मलार, कानड़ा, कल्याण प्रभाती और जैजवन्ती है। कुछ प्रमुख रागों का उल्लेख कवियों के पदों के साथ प्रस्तुत है। '**गुरु** ग्रन्थ में भगत' कबीर की सर्वाधिक रचनाएँ हैं, अतः उन पर अलग से विचार करने की जरूरत हैं उनके ज्ञान, विज्ञान, अनुभव–संसार, उनका कहना, सुनना, बोलना, चालना कैसे सबसे अलग है।

कबीर शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा अनुभव ज्ञान को अधिक महत्व देते थे। उनका विश्वास सत्संग में था। उन्होंने अद्वैत से इतना ग्रहण किया कि ब्रह्म एक है, द्वितीय नहीं। जो कुछ भी दृश्यमान है, वह माया है, मिथ्या है और उन्होंने माया का मानवीकरण कर उसे कंचन और कामिनी का पर्याय माना। उनका ईश्वर एक है, जो निर्गुण और सगुण से परे है। वह निर्विकार है, अरूप है। उसे मूर्ति और अवतार में सीमित करना ब्रह्म की सर्वव्यापकता का निषेध करना है। वे संसार से निर्लिप्त रहने वाले मनुष्य थे। 'हमन है इश्क मस्ताना हमें दुनिया से यारी क्या?' वे इसी विचार धारा को अपने पदों में बार–बार दुहराते थे।

कबीर के लिए न हिन्दू का महत्व है, न मुसलमान का। संत कवियों में अनेक न हिन्दू की घोषणा करते है, न मुसलमान की। कबीर तो स्पष्ट रूप से केवल हिन्दू और मुसलमान को अस्वीकार नहीं करते बल्कि 'ना मैं धर्मी ना मैं अधर्मी' अर्थात् यह भी कहते हैं कि मेरा धर्म नहीं है, या है। उनकों कोई साहब बनाये या **सदगुरु** या **गुरु** भगत, वे तो अपने को साफ–साफ दास कहते है। **गुरु** ग्रन्थ साहिब

में उनकी रचनाओं की संख्या प्रभुत है और विभिन्न रागों में हैं राग रामकली **घरु**–**घरु** का एक पद इस प्रकार है–

1 ओं **सतिगुरु** प्रसादि। बंधचि बंधनु पाइया। मुकर्त गुरिह अनलु बुझाइया। जब नख सिख इहु मनु चीन्हा। तब अंतरि मजन कीन्हा।।1।। पवनपति उनमनि रहनु खरा। नहीं मिरतु न जनमु जरा।।1।। रहाउ।। उलटीले सकति सहारं। पैसी ले गगन मझारं। बेधीअले चक्र भुअंगा। भेटीअले राइ निसंगा।।2।। चूकीअले मोह मइआसा। ससि कीनो सूर गिरासा। जब कुंभकु भरिपुरि लीणा। तह बजे अनहद बीणा।।3।। बकतै बकि सबदु सुनाइया। सुनतै सुनिमंनि बसाइया। करि करता उतरसि पारं। कहै कबीरा सारं।।4।।1।।[8]

भक्ति से ही दुख का प्रभाव नष्ट होता है। भक्ति कबीर की दृष्टि में निष्काम होनी चाहिए। वे तो यह भी कहते हैं कि, 'जौ कासी तन तजे कबीरा तो रामहु कौन निहोरा'। भक्ति के द्वारा वे स्वर्ग भी नहीं चाहते। **गुरु** ग्रन्थ साहिब में कबीर के साथ–साथ रविदास ने भी **गुरुतत्व** एवं वैराग्य सम्बन्धी भावनाएँ व्यक्त की है। ये दोनो सन्त कवि एक दूसरे से काफी समानता रखते थे। रविदास की कई रचनाएँ **गुरु** ग्रन्थ साहब में राग रामकली में गाई हुई संग्रहित है। रामकली भक्ति भावना के लिए संभवतः सबसे उपयुक्त राग है। संभवतः इसी कारण प्रायः सभी कवियों ने इस राग का उपयोग अपनी वाणी में किया है।

1 ओं सति गुरू प्रसादि। पड़ीए गुनीएं नामु सभु सुनीऐ अनुभउ भउ न दरसै। लोहा कंचनु हिरन होई कैसे जउ पारसहि न परसै।।1।। रहाउ।। हम बड कवि कुलीन हम पंडित हम जोगी संनिआसी। गियानी गुनी सूर हम दाते इह बुधि कबहि न नासी।।2।। कहु रविदास सभै नहीं समझसि भूलि परे जैसे बउरे। मोहि अधारू नामु नाराइन जीवन प्रान धन मोरे।।3।।1।।

गुरु ग्रन्थ साहब में राग विलावन का भी कई भगत कवियों की रचनाओं के साथ सम्बन्ध बताया गया है। यह प्रातर्गेय राग है। इसके निकट कर्णाटकी विलहरी राग है। संतों की वाणी के लिए बिलावल प्रसिद्ध राग माना जाता है। संभवतः बिलावल में गेयता की सरलता होने के कारण कबीर, रविदास, धन्नों ने इसे अपनाया था। कबीर का एकपद जो **गुरु** ग्रन्थ साहिब की सैची संख्या तीन में है, जो इस प्रकार है–

1 ओं सतिनम करता पुरखु गुर प्रसादि।। ऐसो इहु संसारू पेरवना रहनु न कोऊ पईहै रे। सूधे–सूधे रेगि चलहु तुम नतर कुधका दिवइहै रे।।1।। रहाउ।। बारे बूढे त**रुने** भईआ सभहु जमु लै जइहै रे। मानसु बपुरा मूसा कीनो मीचु बिलईआ खइहै रे।।1।। धनवंता **अरु** निरधनमनई ताकी कछू न कानीरे। राजा परजा सम

करि मारे ऐसा कालु बड़ानी रे।।2।। हरि के सेवक जो हरिभाए तिन्ह की कथा निरारी रे। आवहि न जाहि न कबहू मरते पारब्रह्म संगारी रे। ।।3।। पुत्र कलत्र लछिमी माइआ इहै तजहु जीअ जानी रे। कहत कबीर सुनहु रे संतहु मिलिहै सारिगपानी रे।।4।।1।।[10]

कबीर दास का मानना है कि यह संसार ऐसे विचित्र खेल–तमाशे के समान है जहाँ कोई रह नही सकता। सब अपना–अपना समय आने पर चले जाते हैं। सब जीव चलायमान हैं सीधे–सीधे लोग अपने रास्ते पर चले जाते हैं, नहीं तो पीछे आने वाले लोगों के धक्के खाने पड़ते हैं। बालक, **तरुण** और वृद्ध सभी मृत्यु के द्वारा क्रम में लाये जाते हैं। बेचारा मनुष्य चूहे की तरह मष्त्यु रूपी बिल्ली के द्वारा ग्रस लिया जाता है। चाहे कोई धनवान हो या निर्धन, किसी का कोई डर नहीं। यम इतना व्यापक है कि राजा और प्रजा सब को समान रूप से मारता है। किंतु हरि के उन सेवकों की कथा इससे अलग है, क्योंकि वे हरि के प्रिय होते हैं। परब्रह्म स्वयं उनका साथी होता है, इसलिए आवागमन से मुक्त होते हैं और अमर हो जाते हैं। इसलिए हे प्यारे जीव! स्त्री, पुत्र और धन–दौलत को माया समझकर त्यागो। कबीर जी कहते हैं कि हे सज्जनो! तुम्हें तभी परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। संसार की नश्वरता एवं क्षणभंगुरता का वर्णन कबीर के अनेक पदों में दिखाई देता है। संभवतः इसी कारण कबीर दास ने अपने को सबसे बड़ा दुखिया माना है। जब सारा संसार सोता है सुख की नींद, तब कबीर दास जागते हैं और रोते रहते हैं।

1ओं सति **गुरु** प्रसादि।। सनक सनंद महेस समानां। सेख नागि तेरो मनमु न जाना।।1।। संतसंगति रामु रिदै बसाई।।1।। रहाउ।। हनूमान सरि गरूढ़ समानां। सुरपति नरपतिनहीं गुन जानां।।3।। चारिबेद **अरु** सिंम्रिमि पुराना। कमलापति कवला नहीं जानां।।3।। कहि कबीर सो भरमै नाहीं। पग लगि राम रहे सरनांही।।4।।1।।[11]

भगवान की महिमा का गान करते हुए कबीरदास जी कहते हैं हे प्रभु! सनक, सनन्दन और शिव जैसों ने तुम्हारा रहस्य नहीं पाया। शेषनाग भी तुम्हारा भेद न समझ सके। मैं संतों की संगति में रहकर परमात्मा का नाम हृदय में धारण कर सका हूँ। हनुमान, गरूड़, देवराज इन्द्र और बड़े–बड़े राजाओं ने भी तुम्हारे गुणों का अंत नहीं पाया। वेद, स्मृति और पुराण आदि किसी ने तुम्हें नहीं समझा। विष्णु और लक्ष्मी ने तुम्हारा ओर–छोर नही पाया। कबीरदास का कहना है कि संसार में सभी व्यक्ति भ्रमित हो रहे है। केवल वही व्यक्ति भ्रम से बचा रह सकता है, जो संतो के चरण स्पर्श कर प्रभु की शरण में जीवन बिताता है। कबीर की भाँति ही राग धनासरी का प्रयोग नामदेव की पदावली में भी पाया जाता है। ऐसे पदों में संसार की असारता, अहंकार का नाश, ईश्वर कृपा, माया मोह का बन्धन जैसे

विषयों पर विचार प्रकट किया गया है। ईश्वर की महिमा से ओतःप्रोत तथा ईश्वर की कृपा से सर्वोपरि माने वाला इस प्रकार हैः

पतित पावन माधउ बिरदु तेरा। धंनि ते वै मुनि जन जिन धिआइयो हरि प्रभु मेरा।।1।। मेरे माथै लागी ले धूरी गोविंद चरनन की। सुरि नर मुनि जन तिनहु ते दूरी।।1।। रहाउ।। दीन का दइआलु माधौ गरब परहारी। चरन सरन नामावलि तिहारी।।2।।5।।[12]

हे माधव! विकार ग्रस्त व्यक्तियों को पवित्र रखना तुम्हारा विरद है। हे भाई! वे मुनि लोग भाग्यशाली हैं, जिन्होंने प्रभु का स्मरण किया है। प्रभु कृपा से मुझे भी प्रभु की चरण धूलि मस्तक पर लगाने का मौका मिला है। वह चरण धूलि जो देवता और मुनिया को भी प्राप्त नहीं हो सकी। हे माधव! तुम दीनों पर दया करने वाले हो। तुम अहंकार का विनाश करते वाले हो। मैं नामदेव तुम्हारी शरण में आया हूँ और तुम्हारे ऊपर अपने आप को न्यौछावर करता हूँ **गुरुग्रन्थ** साहिब में भक्त कबीर ने राग गूजरी में कई पद गाये है। एक पद का उदाहरण देकर बात स्पष्ट की जा सकती हैं इस पद में कबीरदास ने रोजी–रोटी की अनिवार्यता को परोक्षरूप से व्यक्त किया है। वे स्वयं अपने मुँह से नहीं बल्कि माँ के मुँह से कहलवाते हैं। पद इस प्रकार हैः

।।गूजरी धरू3।। मुसि–मुसि रोवैं कबीर की माइ। ए बारिक कैसे जीवहि रघुराई।।1।। तनना बुनना सभु तजिओ है कबीर। हरि का नामु लिखि लीओ सरीर।।1।। रहउ।। जब लगि तागा बाहउ बेही। तब लगु बिसरै रामु सनेही।।2।। ओछी मति मरी जाति जुलाहा। हरि का नामु लहिऔ मैं लाहा ।।3।। कहत कबीर सुनहु मेरी माई। हमरा इनका दाता एक रघुराई।।4।।2।।[13]

कबीर की माँ सुबक–सुबक कर रोती हैं और ईश्वर से प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभु! कबीर के बाल–बच्चे जीवित रहेंगे? क्योंकि कबीर ने ताना तानना और कपड़ा बुनना सब कुछ त्याग दिया है। प्रतिपल हरि का नाम जपता रहता है। कबीर का भी अपना तर्क है। कबीर का मानना है कि जब तक मैं नली के सुराख में धागा पिरोता हूँ तब तक मुझे मेरा प्रिय प्रभु विस्मृत हो जाता है। मेरी बुद्धि छोटी है और जाति का जुलाहा हूँ लेकिन मैंने परमात्मा का नाम रूपी लाभ प्राप्त कर लिया है इसलिए मैं अब नीच न होकर परमात्मा–नाम के बल पर कुलीन हो गया हूँ। कबीर का कथन है कि हे मेरी माँ। सुनो हमें और हमारे बच्चों को भोजन देने वाला एक ही परमात्मा है अर्थात् ईश्वर ही सबका रक्षक है। उसके सहारे मैंने पूरा परिवार छोड़ दिया है। वही अब उनका भरण–पोषण करेगा क्योंकि वही सबका पालन–पोषण है। राग केदारा में गाया हुआ कबीर का पद मनोविकारों से मुक्त करने की सलाह देता है।

ऐसे कई पद ग्रन्थ में है। जिनमें विषय–वासनाओं को त्याग कर जीवन सार्थक बनाने की बात दुहराई गई है। राग केदार में कबीर का एक पद इस प्रकार है–

1 ओं सतिगुर प्रसादि।। रंगि रमहु आत्माराम। बनह बसे का कीजिए जे मन नहीं तजै बिकार। घर बन तत समि जिनि किया, ते बिरला संसार।। का जटा भसम लेपन कियें, कहा गुपफा मैं बसा। मन जीत्यां जग जीतिये, जो विषया रहै उदास।। सहज भाइ जे उपजै, ताक किसा मान अभिमान। आपा पर समि चीनियै, तब मिलै आतमांराम।। कहै कबीर कृपा भई, गुरू ग्यांन कहया समझाइ। हिरर्द श्री हरि भेटियै, जे मन अनतै नहीं जाइ।।

अर्थात् रे जीव् अपने आत्माराम के प्रेम रंग कर उसी में समा जाओ। इस प्रकार वास्तविक सुख प्राप्त करो। यदि मन के विकार, काम क्रोध, मोह नहीं छूटते तो सन्यासी बनकर वन में जाकर रहने से क्या लाभ हो सकता हैं। ऐसे व्यक्ति संसार में बहुत थोड़े हैं, जिन्होंने सच्ची साधना की दृष्टि से घर को ही वन के समान कर लिया है। जटा रखने, भस्म रमाने अथवा गुफा में वास करने से कोई लाभ नही होता। यदि विषयों के प्रति उदास रहकर मन को जीत लिया जाये तो संसार को जीत लिया जाता है। जिसके हृदय में भगवान प्रति स्वाभाविक प्रेमानूभूति उत्पन्न हो जाती है अथवा सहज की अनुभूति भाग जाती है और जिसका मन इधर–उधर नहीं भटकता तो उसे मन के भीतर ही ईश्वर का मिल जाते है। **गुरुग्रन्थ** साहिब में सर्वाधि पद कबीर के है, किन्तु अन्य भगत कवियों के पद भी उतने ही महत्वपूर्ण है उनकी संख्या भले ही कम है, किन्तु महत्व बराबर है। **गुरुग्रन्थ** साहिब में ये मोती की भांति गुंथे हैं। इसी क्रम में यह भी जान लेना आवश्यक है कि **गुरुग्रन्थ** साहिब का महत्व इन भगत कवियों विशेषकर कबीर के कारण बढ़ा है।

इस आलेख में यह बात भी स्पष्ट है कि वास्तव में सिद्धों के समय कविता को विचार और दर्शन का माध्यम बनाया गया, लेकिन बोलने वाली कविता नहीं बल्कि सुनने वाली कविता को योग्यता देने के लिए सिद्धों, नाथों की रचनाओं को विभिन्न ग्रन्थों में ग्रन्थित किया गया है। प्रत्येक राग का अपना समय, अपनी ऋतु या शास्त्रीय विधान होता है। प्रातः काल के राग भैरव को रात के राग विहाग में गाया जाता है। भैरव राग की कविता को विहाग राग में उतारा जा सकता है। रागों का अपना कुल, जाति और चरित्र होता है जो कविता की बाह्य संरचना अर्थात् छन्द, लाय की आन्तरिक संरचना अर्थात् अर्थ और अभिप्राय से सम्बद्ध होता है। संगीत का व्याकरण एक तरह का वाक्रण भी है। वाक् अर्थात् वचन या वाणी का संघर्ष। संबोधन, विस्मय सूचक भाषिक इकाइयों का कविता में ध्रुवक या टेक केवल गीतात्मक नहीं है। अर्थमय होते है। ये कोरे तुक या अन्त्य तुक या लय केवल अलंकार नहीं है। श्रृंगार

नहीं है, अर्थ तक पहुचने की सुरयात्रा भी हैं इसलिए **गुरुग्रन्थ** साहिब को ठीक से समझने के लिए रागो या पदों में बंधे हुए अनुबन्ध समझना जरूरी है।

गुरुग्रन्थ साहिब में संग्रहित भगत संत कवियों की रचनाओं में एक काल का विशेष में देश के विभिन्न भागों में विकसित विभिन्न संत परंपराओं के बीच एक विशेष प्रकार का सामंजस्य अथवा भावनात्मक ऐक्य दिखलायी पड़ता है। इन संतों की भाषा भिन्न हो सकती है। इसके परिधान अलग हो सकते हैं। इनका व्यवसाय, इनकी जाति, अलग हो सकती है, परन्तु इनका लक्ष्य एक है। इनके भीतर भावना और लक्ष्य की एकता है, जिसका सबसे बड़ा प्रमाण **गुरुग्रन्थ** साहिब में दिखायी देता है। वस्तुतः ये सभी संत मानव धर्म के पक्षधर थे, जो विश्व के विभिन्न धर्मों तथा धर्माचार्यों द्वारा देशकाल के अनुरूप विशिष्ट रीति से व्याख्यायित हुआ है। संतों का सीधा सरोकार इसी मानव धर्म से है जो देश, काल, जाति, कुल, वर्ग और अनेकानेक प्रकार की भेदक स्थितियों के बीच एक समान है। इनकी दृष्टि में तो एक ही सुविचारित मार्ग था और वह संत अथवा सत्य का मार्ग। सत्य एक ही है, जिसका वर्णन वेदों, उपनिषदों, धर्मशास्त्रों, महात्माओं तथा ऋषियों ने समय–समय पर किया है और यह वही सत्य है कि ईश्वर मनुष्य की आत्मा के भीतर निवास करता है। आत्मा को जानना, पहचानना और इसके ईश्वरत्व का साक्षात्कार करना ही मानव–धर्म है। कबीर इन सभी संतो के अग्रणी हैं। सर्वाधिक रचनाएँ उन्हीं की हैं। उन पर अलग से विचार करने की आवश्यकता है।

गुरुग्रन्थ साहिब में संतों, भक्तों, भाटों की वाणियों के संकलन पर विचार करने हुए यह बात बहुत महत्वपूर्ण लगती है कि जब **गुरुओं** की प्रामाणिक वाणी का संग्रह तैयार हो रहा था, तब **गुरुओं** के साथ सन्त–महात्माओं की वाणियों का पाठ करते थे। अपने शिष्यों को उपदेश स्वरूप सुनाया करते थे। दूसरे **गुरु** अर्जुनदेव ने यह भी अनुभव किया कि संतों की वाणियाँ **गुरु** परम्परा का निर्वाह करने वाली है। अतः **गुरु** परम्परा का महत्व स्थापित करने तथा शिष्यों को यह समझाने के लिए कि **गुरुवाणी** एवं संतवाणी परस्पर विरोधी नहीं, समर्थक है। दोनों का भाव एक हैं। दोनो परमार्थ की बात करते है। इहलोक के भौतिक सुख एवं क्षण भंगुर जीवन के बोध से अनभिज्ञ नहीं है। इसलिए संतों एवं **गुरुओं** की वाणी को एक ग्रन्थ में संग्रह करके हम समभाव, सौहार्द्र, राष्ट्रीय एकता, समन्वय, सामंजस्य, समता के आधार पर जीवन–मूल्यों की स्थापना कर मानव कल्याण कर सकेंगे। **गुरुग्रन्थ** साहिब शिक्षाएँ, उपदेश यदि संतो के पदों से सम्मिलित न होते तो संभवतः आज इनकी प्रासंगिकता लुप्त हो जाती। यह ग्रन्थ जाति विशेष, धर्म विशेष, वर्ग विशेष, भाषा विशेष, के बीच सिमट जाता। **गुरु** अर्जुनदेव की दूरगामी दर्षष्टि के परिणामस्वरूप यह नामी ग्रन्थ न

केवल सिक्ख समाज में बल्कि समूची भारतीयता में, संपूर्ण मानव जाति के समादरणीय है। कौमी एकता की मिशाल बनकर अनादिकाल तक संदेश देता रहेगा। कबीर की **गुरुवाणी** अपनी सम्पूर्णता **गुरुता** के साथ इस अनुगूंज को और अधिक मुखर बनायेगी, यह भी निःसंदेह कहा जा सकता है।

संदर्भः

1. संस्कृति के चार अध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, नवीन संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पृ.स. 326।
2. श्री **गुरुग्रन्थ** साहिब की पहली सैची, द्वितीय संस्करण, प्रकाशक भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ पृसं04।
3. भावनात्मक एकता और संत साहित्य, प्रथम संस्करण, डा0 विजयेन्द्र नाथ मिश्र, सेवक प्रकाशन, वाराणसी, पृ0सं0 238।
4. श्री **गुरुग्रन्थ** साहिब की पहली सैंची, सं0एवं अनु0 डा0 मनमोहन सहगल, द्वितीय संस्करण, प्रकाशक भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ पृ0 सं0 903।
5. उत्तर भारत की संत परंपरा, पं0 परशुराम चतुर्वेदी, पृ0सं0 333। हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास, चतुर्थ भाग, प्रथम संस्करण संपादक परशुराम चतुर्वेदी प्रकाशक नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृ0सं0 162 से साभार।
6. श्री **गुरुग्रन्थ** साहिब की पहली सैंची, द्वितीय संस्करण, सं0एवं अनु0 डा0 मनमोहन सहगल, प्रकाश भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ, पृ0सं0 963।
7. वही पृ0सं0 962–63।
8. श्री **गुरुग्रन्थ** साहिब की तीसरी सैंची, सं0 एवं अनु0 डा0 मनमोहन सहगल, द्वितीय संस्करण, प्रकाशक भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ पृ0सं0 643–44।
9. वही पृ0सं0 648।
10. वहीं पृ0सं0 361–362।
11. श्री **गुरुग्रन्थ** साहिब की दूसरी सैंची, सं0 एवं अनु0 डा0 मनमोहन सहगल, द्वितीय संस्करण, प्रकाशक भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ, पृ0सं0 922।
12. वहीं, पृ0सं0 927–28।
13. वही, पृ0सं0 501।